ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 8.4
IJAR 2023; 9(5): 181-189
www.allresearchjournal.com
Received: 18-03-2023
Accepted: 15-04-2023

डॉ. रजनी मैहला
सहेयक प्रोफेसर, हिंदी भाषा विभाग, संस्कृत कॉलेज, सुंदर नगर, हिमाचल प्रदेश, भारत

Corresponding Author:
डॉ. रजनी मैहला
सहेयक प्रोफेसर, हिंदी भाषा विभाग, संस्कृत कॉलेज, सुंदर नगर, हिमाचल प्रदेश, भारत

ग्राम्य–सामाजिक परिवेश

डॉ. रजनी मैहला

सारांश
भारत एक ग्राम प्रधान देश होने की दृष्टि से यहाँ के प्रत्येक नागरिक को इस शास्त्र का ज्ञान होना अनिवार्य है। भारतीय विश्वविद्यालयों में यह विज्ञान अनिवार्य रूप से पढ़ाया जाना चाहिए ताकि आज के युवक गांवों के जीवन से अपरिचित न रहें। अधिकांशतः यह देखा जाता है कि विश्वविद्यालयों की शिक्षा से उत्तीर्ण होकरकार्यकर्त्ता गांवों में जाते हैं तो वे सफल नहीं होते हैं विश्वविद्यालयों से निकले युवक ग्रामीण जिन्दगी से घृणा करते हैं। अतः ग्रामीण समाजशास्त्र का व्यावहारिक दृष्टिकोण भारत के लिए महत्त्वपूर्ण है। हमारी वर्तमान सरकार ग्राम विकास की ओर लगी हुई है। ऐसी स्थिति में इस प्रकार के ज्ञान की अत्यन्त आवश्यकता है। सरकार इस ओर विशेष प्रयत्नशील है। ग्रामीण क्षेत्रों की उन्नति के लिए इस विज्ञान का विस्तार अत्यधिक आवश्यक है।

कूटशब्द : समाजशास्त्र, ग्रामीण समाजशास्त्र, ग्राम्य–सामाजिक, व्यावहारिक दृष्टिकोण, सामाजिक सम्बन्धों

प्रस्तावना

ग्रामीण समाजशास्त्र की उत्पत्ति

ग्रामीण समजाशास्त्र की उत्पत्ति कब हुई, यह निश्चित रूप से नहीं बताया। जा सकता है। सृष्टि के प्रारम्भ से ही मनुष्य अपने चारों ओर की वस्तुओं को समझने का प्रयत्न करता रहा है। सर्वप्रथम मनुष्य ने उन वस्तुओं का अध्ययन प्रारम्भ किया जो उससे अत्यधिक दूर थी। नक्षत्रविद्या की उत्पत्ति सर्वप्रथम हुई। मनोविज्ञान और समाजशास्त्र इत्यादि को उत्पत्ति अभी थोड़ा समय पहले ही हुई है।

1. **समाजशास्त्रः–** समाजशास्त्र को विशेष प्रोत्साहन आगस्ट काम्त से मिला। वह एक ऐसे समाज को स्थापना करना चाहता था जो मानव जीवन और उसकी क्रियाओं का सम्पूर्ण रूप से अध्ययन करें। उसने इस शास्त्र का नाम समाजशास्त्र रखा। समाजशास्त्र शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग आगस्त काम्त ने ही किया। काम्त को समाजशास्त्र का पिता कहा जाता है।

समाजशास्त्र पर अन्य विद्वानों ने भी अपने विचार व्यक्त किये हैं। विभिन्न विद्वानों ने विभिन्न विज्ञानों की पद्धतियों के द्वारा सामाजिक प्रक्रिया के अध्ययन का प्रयत्न किया। इनके विभिन्न सम्प्रदाय समाजशास्त्र में हैं। समाजशास्त्र की अपनी समाजशास्त्रीय पद्धति है, न कि प्राणी–शास्त्रीय या मनोवैज्ञानिक। धीरे–धीरे समाजशास्त्र एक स्वतन्त्र विज्ञान बन गया।

टॉनीज ने भी समाजशास्त्र के विकास में बड़ी सहायता दी। टॉनीज का अनुसरण अन्य जर्मन समाजशास्त्रियों ने किया। उन्होंने अपनी रूचि सामाजिक सम्बन्धों पर क्रेन्द्रित रखी। उनमें से जार्ज सिमल, वॉन विजे और वीरकेंट प्रमुख हैं। समाजशास्त्र के सिद्धान्तों के विषय में जर्मन समाजशास्त्रियों ने बड़ी रूचि ली और अमरीका में समाजशास्त्र को बड़ा प्रोत्साहन मिला।

समाजशास्त्र पृथक विज्ञान के रूप में आधुनिक युग में ही उपस्थित हो सका है। अभी इसने अपना शैशवकाल भी पार नहीं किया है, परन्तु इसका महत्त्व दिन प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है। समाजशास्त्र का अध्ययन एक विज्ञान के रूप में एक यादो शताब्दी तक ही सीमित है। इस दृष्टि से देखा जाए तो समाजशास्त्र के इतिहास को उस समय से प्रारम्भ हुआ बताया जा सकता है जब से कि मनुष्य ने सामाजिक समस्याओं पर विचार करना प्रारम्भ किया। इसे विज्ञान के रूप में मान्यता तो अभी हाल ही में प्राप्त हुई है।

संयुक्त राज्य अमरीका में समाजशास्त्र का अध्ययन विश्वविद्यालयों में 1876 में प्रारम्भ हुआ। इस देश में इसका महत्त्व बढ़ता जा रहा है और अधिकतर विश्वविद्यालय इसे अपने पाठ्यक्रमों में स्थान दे रहे हैं। इंग्लैण्ड में इसका अध्ययन 1907 में प्रारम्भ हुआ। फ्रांस में 1886 में विश्वविद्यालयों ने इस विषय का अध्ययन प्रारम्भ किया। पोलैण्ड में 1920, मिस्र में 1924 और स्वीडन में 1947 में इसका अध्ययन प्रारम्भ हुआ।

भारत में समाजशास्त्र 1919 में बम्बई विश्वविद्यालय में प्रोफेसर पैट्रिक गिडिस की अध्यक्षता में प्रारम्भ हुआ। 1924 में डाक्टर घुरिये प्रथम भारतीय समाजशास्त्री थे जिन्होंने इस विभाग की अध्यक्षता ग्रहण की। समाजशास्त्र पृथक् विषय के रूप में बम्बई विश्वविद्यालय में 1930 के उपरान्त अपना स्थान पा सका।

अतः यह स्पष्ट हो गया है कि समाजशास्त्र अभी कुछ वर्षों पूर्व ही व्यवस्थित ज्ञान के रूप में प्रारम्भ हुआ है। इसके पहले हर अनुशासन के व्यक्ति ने समाजशास्त्री होने का दावा किया है। समाजशास्त्र के कुछ निकट पहुँचने का प्रथम प्रयास यूनानी विचारकों ने किया था। ग्रामीण समाजशास्त्र की उत्पत्ति ग्रामीण समाज की कहानी मानव की सभ्यता की कहानी है। अनेक प्राचीन विद्वानों ने ग्रामीण समाजों का अध्ययन भी किया है, लेकिन वे वैज्ञानिक आधार के अभाव में किसी विशिष्ट ज्ञान की परिधि में नहीं रखे जा सकते हैं। पितृम सोरोकिन, जिम्मरमेर एवं गाल्पिन द्वारा सम्पादित कृति 'ए सिस्टेमेटिक सोर्स बुक इन रूरल सोश्योलॉजी' के प्रथम भाग में विभिन्न विद्वानों द्वारा किए गए ग्रामीण समाजों के अध्ययन को प्रस्तुत किया है परन्तु इन अध्ययनों को ग्रामीण समाजशास्त्र की संज्ञा नहीं दी जा सकती है।

"ग्रामीण समाजशास्त्र का विकास एक पृथक विषय के रूप में विकास उन्नीसवीं शताब्दी में ही माना जाता है। औपचारिकतः ग्रामीण समाजशास्त्र, समाजशास्त्र की एक शाखा के रूप में ही स्थापित हो पाया। इसी का परिणाम था कि विभिन्न समाजशास्त्रियों का ध्यान ग्रामीण समुदायों की ओर आकर्षित होना प्रारम्भ हुआ तथा एक व्यापक स्तर पर ग्रामीण समुदायों के विभिन्न दलों का अध्ययन किया जाने लगा। ओल्फुसन मोरर, मेन, स्टेमन, लेवले, बेडन पावेल, इल्टन, पॉलक, मेटलैण्ड तथा लेविसकी आदि प्रमुख विद्वानों ने ग्रामीणता का व्यापक अध्ययन किया।''

सबसे पहले एक व्यवस्थित विज्ञान के रूप में ग्रामीण समाजशास्त्र की उत्पत्ति संयुक्त राज्य अमेरिका में हुई। 1876 में अमेरिकी विश्वविद्यालयों में ग्रामीण समाजशास्त्र का अध्ययन प्रारम्भ हुआ। वस्तुतः 1890 से 1920 तक का समय अमेरिका के ग्रामीण समाज के लिए संकट का समय था। इस सम्पूर्ण काल को 'शोषण का युग' के नाम से जाना जाता है। इस समय अमेरिकन ग्रामीण समाज में अनेक समस्याएँ उत्पन्न हो गई थीं, जिनसे मुक्ति पाना अनिवार्य था। भूमि की कीमत चरम सीमा पर पहुँच गई थी। औद्योगिक सभ्यता कष्टदायक हो गई थी, कृषकों पर भूमि का स्वामितत्व हट रहा था एवं धर्म व चर्च आदि का प्रभाव घटने लगा था। नगरीकरण की प्रक्रिया बलवती होने लगी थी। सिम्स ने 'एलमेन्ट्स ऑफ रूरल सोश्योलॉजी' में लिखा था कि "सम्पूर्ण काल ग्रामीण समाजों के पतन का काल था।

इन्हीं परिस्थितियों से प्रेरित होकर अनेक समाज वैज्ञानिकों का ध्यान इन ग्रामीण समस्याओं की ओर आकर्षित होना प्रारम्भ हुआ तथा शिकागो, मिशीगन, इकोटा, कोलम्बिया तथा अनेक दूसरे विश्वविद्यालयों में ग्रामीण समाज एवं उसकी समस्याओं का व्यापक अध्ययन आरम्भ कर दिया गया। समाजशास्त्रियों के यही प्रयास ग्रामीण समाजशास्त्र के विकास की आधारशिला बन गए। डॉ० ए. आर. देसाई लिखते हैं कि ''इस सम्पूर्ण प्रयास ने ग्रामीण समाज के विकास के लिए एक अनुकूल वातावरणअवश्य तैयार किया, परन्तु यह प्रयास ग्रामीण समाजशास्त्र को एक विज्ञान का रूप प्रदान नहीं कर सके"।

ग्रामीण समाजशास्त्र की वास्तविक उत्पत्ति बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में हुई। 1908 में अमेरिका के तत्कालीन प्रेसीडेन्ट रुजवेल्ट ने डीन बेले की अध्यक्षता में एक ग्रामीण जीवन आयोग की नियुक्ति की। इस आयोग ने ग्रामीण जीवन की विविध समस्याओं का अध्ययन करने के लिए क्षेत्रीय अनुसन्धान कार्य किया। टी. लिन स्मिथ ने इस आयोग की रिपोर्ट के महत्त्व पर अपनी राय व्यक्त करते हुए लिखा है कि 'बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में 'कन्ट्रीलाइफ कमीशन' की रिपोर्ट के प्रकाशन ने ग्रामीण समाजशास्त्र के नवीन शास्त्र को अत्यधिक प्रोत्साहन दिया है। इसी प्रतिवेदन के महत्त्व पर टिप्पणी करते हुए डॉ देसाई लिखते हैं कि "वास्तविक में इस प्रतिवेदन के जो तथ्य प्रदान किए उन्हें हम ग्रामीण समाजशास्त्र के लिए एक घोषणा पत्र कह सकते हैं।'' 1906 से 1912 के मध्य कोलम्बिया विश्वविद्यालय ने अनेक महत्त्वपूर्ण शोध लेख प्रकाशित किए। जे. एम. विलियम्स ने 'एन अमेरिकन टाउन', डब्ल्यू एच. विल्सन ने क्वेकर हिल', एन.एल. सिम्स ने ए होजियर विलेज' जैसी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण रचनाएं प्रकाशित की जो क्षेत्रीय साक्षात्कार पद्धति पर आधारित थीं। चार्ल्स जे. गालपिन ने 'द सोशल एनाटांमी ऑफ ए एग्रीकल्चरल कम्युनिटी' नामक ग्रन्थ प्रकाशित किया जो ग्रामीण समाजशास्त्र के भावी विकास के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण ग्रन्थ सिद्ध हुआ। जॉन एम. गिलेटी ने 'रूरल सोश्योलाजी' नाम से पुस्तक तैयार की। जिसके द्वारा ग्रामीण समाजशास्त्र को समाजशास्त्र की एक शाखा के रूप में प्रतिष्ठा प्राप्त हो पाई। सम्भवतः इसी के कारण अमेरिका में 1917 में सबसे पहले ग्रामीण समाजशास्त्र के लिए एक पृथक विभाग की स्थापना की गई। प्रथम विश्वयुद्ध के पश्चात् अर्थात् 1919 में अमेरिका के कृषि विभाग के अन्तर्गत 'व्यूरो ऑफ एग्रीकल्चरल इकोनोमिक्स' तथा 'फार्म लाइफ स्टडीज' शाखाओं का गठन किया एवं डॉ० चार्ल्सजे. गालपिन को इसका अध्यक्ष बनाया गया। बाद में इस विभाग का नाम 'फार्म पापूलेशन एण्ड रूरल लाइफ कर दिया गया। वर्तमान में भी यह विभाग इसी नाम से जाना जाता है। 1925 में अमेरिकी सरकार ने 'पुरनल एक्ट' पारित किया, जिससे राज्य सरकारों को ग्रामीण पुनरुत्थान के लिए आर्थिक सहायता प्राप्त होने लगी। 1930 में 'एसिस्टेमेटिक सोर्स बुक इन रूरल सोश्योलॉजी' नामक पुस्तक के प्रकाशन से इस विषय का महत्त्व अत्यन्त बढ़ता गया। इसी से प्रेरित होकर 1935 में 'रूरल सोश्योलॉजी' नामक एक त्रमासिक पत्रिका का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ। इस पत्रिका में प्रकाशित ग्रामीण जीवन पर अनेक लेख ही आगे चलकर ग्रामीण समाजशास्त्र के सुदृढ़ प्रतीक बने। 1937 में अमेरिका में 'रूरल सोश्योलॉजीकल सोसाइटी' नामक संगठन का गठन किया गया। द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात् अमेरिका ही नहीं वरन् संसार के अन्य राष्ट्रों में निर्धनता और भुखमरी को दूर करने के लिए ग्रामीण पुनर्निर्माण को विशेष महत्त्व दिया जाने लगा। संयुक्त राष्ट्रसंघ ने इस सम्बन्ध में अनेक सुन्दर ग्रन्थों का प्रकाशन किया, जिनका अध्ययन ग्रीस, इटली, जापान, दक्षिणी अमेरिका व अन्य अनेक राष्ट्रों ने किया। नेल्सन, बूनट, लुमिस, बोगल, बरट्राण्ड आदि अनेक विद्वानों ने इस क्षेत्र में अपनी रचनाएं प्रस्तुत की। वर्तमान में सोरोकिन, डिम्मरसेन, गालपिन, कोल्ब, बेनर, सिम्स, अनुरसन, लेन्डिस, रेडफील्ड, स्मिथ जैसे विद्वान ग्रामीण समाजशास्त्र को समृद्ध कर रहे हैं। ए. आर. देसाई ने लिखा है "अब ग्रामीण समाजशास्त्र ने जड़ें पकड़नी प्रारम्भ कर दी हैं जो धीमी किन्तु निश्चित गति से संसार के विभिन्न भागों में फैल रही हैं'।

ग्रामीण समाजशास्त्रः अर्थ एवं परिभाषा

अर्थः— "ग्रामीण समाजशास्त्र वह विज्ञान है जिसमें ग्रामीण समाज का क्रमबद्ध, तथ्य और सिद्धान्तों सहित अध्ययन किया जाता है।" सरल शब्दों में ग्रामीण वातावरण समाजशास्त्र है। ग्रामीण समाजशास्त्र में मानवीय सम्बन्धों का अध्ययन एक विशिष्टपृष्ठभूमि तथा पर्यावरण में किया जाता है। विद्वानों ने इस मूल अर्थ को ही 'ग्राम सुधार का शास्त्र', 'ग्रामीण जीवन का शास्त्र', 'ग्रामीण पुनर्निर्माण का शास्त्र', आदि कहा है। यह सब ग्रामीण समाजशास्त्र के एकांगी अर्थ को प्रगट करते हैं। वास्तविक रूप से इन सबमें अर्थ भाव और उद्देश्यों का समावेश है। प्रमुख रूप से ग्रामीण समाजशास्त्र का उद्देश्य ग्रामीण सामाजिक संगठन का वैज्ञानिक, सुव्यवस्थित एवं सम्पूर्ण रीति से अध्ययन करना है। इसका लक्ष्य ग्रामीण विकास के सम्बन्धित तथ्यों को ढूंढकर

निकालना है। हम समाजशास्त्र में जिन तत्वों का अध्ययन करते हैं उन सब तत्वों का महत्त्व ग्रामीण समाजशास्त्र में भी है। अतः हम कह सकते हैं कि ग्रामीण समाजशास्त्रीय नियमों से ग्रामीण समाज के ढाँचे और विकास में सहायता मिल सकती है। ग्रामीण समाजशास्त्र ग्रामीण जन और जीवन का अध्ययन है। इसमें अन्तर केवल इतना है कि इसमें एक विशिष्ट पर्यावरण में अनेक तत्वों का अध्ययन किया जाता है।

समाजवेत्ताओं ने ग्रामीण समाजशास्त्र को परिभाषित करने का प्रयास इस प्रकार से किया है।

स्टुअर्ट चैपलिन ने अपनी महत्त्वपूर्ण कृति 'Social Structure in Rural Society' में ग्रामीण समाजशास्त्र को परिभाषित करते हुए लिखा है कि "ग्रामीण जीवन का समाजशास्त्र ग्रामीण जनसंख्या, ग्रामीण सामाजिक संगठन और ग्रामीण समाज में कार्यरत सामाजिक प्रक्रियाओं का अध्ययन है। यदि हम चैंपिन की इस परिभाषा का विश्लेषण करें तो हम पाएंगे कि चैपलिन ने अपनी परिभाषा में तीन महत्त्वपूर्ण बातों की ओर संकेत किया है

1. ग्रामीण सामाजिक संगठन–जिसमें गाँव के संरचनात्मक एवं प्रकार्यात्मक पक्ष पर ध्यान दिया जाता है।
2. ग्रामीण जनसंख्या–जिसमें गाँवों के जनसंख्यात्मक पक्ष, स्त्री–पुरुष, घनत्व एवं जनसंख्या वितरण का अध्ययन किया जाता है।
3. सामाजिक प्रक्रियाएं–जिनमें ग्रामीण समाज में पाई जाने वाली प्रमुख संगठनात्मक एवं विघटनात्मक सामाजिक प्रक्रियाओं का अध्ययन किया जाता है, जैसे सहयोग, अनुकूल, प्रतिस्पर्द्धा, संघर्ष आदि।

डॉ॰ सेन्डरसन ने 'रूरल सोश्योलॉजी एण्ड सोशल ऑरगेनाइजेशन' में इसे परिभाषित करते हुए लिखा है कि "ग्रामीण समाजशास्त्र ग्रामीण पर्यावरण में पाए जाने वाले जीवन का समाजशास्त्र है।''" डॉ. सेन्डरसन की इस परिभाषा से स्पष्ट है कि ग्रामीण वातावरण या गाँव में रहने वाले लोगों के सामाजिक जीवन का वैज्ञानिक अध्ययन हो ग्रामीण समाजशास्त्र कहलाता है।

टी. लिन स्मिथ ने अपनी परिभाषा को अधिक स्पष्ट करते हुए अपनी पुस्तक 'जेम`वबपवसवहल व्त्तिंस स्पमि' में लिखा है– "इस पुस्तक में प्रदर्शित दृष्टिकोण इस बात पर बल देता है कि समस्त समाजशास्त्र में एक एकता है। इसके आधारभूत तथ्य एवं सिद्धान्तों का प्रयोग साधारणतः सावधानीपूर्ण कथित सीमाओं में होना चाहिए, जो भुलाए नहीं जाने चाहिएं। कुछ अनुसंधानकर्ता उन घटनाओं और प्रक्रियाओं का अध्ययन करते हैं, जो अधिकतर ग्रामीण पर्यावरण में निहित हो या केवल उन व्यक्तियों तक ही सीमित हैं जो कृषि व्यवसाय को अपनाए हुए हैं। इस प्रकार के समाजशास्त्रीय तथ्य एक सिद्धान्त ग्रामीण समाजशास्त्र के रूप में प्रतिदिन किए जा सकते हैं, जो ग्रामीण सामाजिक सम्बन्धों के अध्ययन से उद्धृत किए जाते हैं। टी. लिन स्मिथ की इस परिभाषा से स्पष्ट है कि ग्रामीण पर्यावरण में सामाजिक सम्बन्धों की व्यवस्था का वैज्ञानिक अध्ययन ही ग्रामीण समाजशास्त्र के नाम से जाना जाता है। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि ग्रामीण समाजशास्त्र में ग्रामीणता का महत्त्वपूर्ण स्थान है। इसी को नींव पर सम्पूर्ण शास्त्र आधारित है।

डॉ. ए.आर. देसाई ने अपनी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण एवं प्रतिष्ठित कृति 'रूरल सोश्यालाजी इन इण्डिया' (Rural Sociology in India) में ग्रामीण समाजशास्त्र कीकोई एक सर्वमान्य परिभाषा न प्रस्तुत कर इसके उद्देश्यों के आधार पर ग्रामीण समाजशास्त्र की प्रकृति को स्पष्ट किया है। इनके अनुसार–"ग्रामीण समाजशास्त्र का प्रमुख उद्देश्य ग्रामीण सामाजिक संगठन उसकी संरचना, प्रकार्यों तथा विकास की वस्तुनिष्ठ प्रवृत्तियों का वैज्ञानिक, व्यवस्थित एवं विस्तृत अध्ययन करता है, तथा एक क्रमबद्ध अध्ययन के आधार पर इसके विकास से सम्बद्ध नियमों को ज्ञात करता है।''

एल नेल्सन ने 'Rural Sociology' में लिखा है कि "ग्रामीण समाजशास्त्र की विषय सामग्री विभिन्न प्रकार के समूहों, जैसे कि वे ग्रामीण पर्यावरण में पाए जाते हैं, का विवेचन तथा विश्लेषण है। 12 जे. बी. चिताम्बर ने Introductory Rural Sociology' में इसे परिभाषित करते हुए लिखा है कि "ग्रामीण समाजशास्त्र को एक ऐसे वैज्ञानिक अध्ययन के रूप में परिभाषित किया जा सकता है, जो ग्रामीण मानव का उन समूहों के सन्दर्भ में अध्ययन करता है, जिन समूहों के मध्य वह ग्रामीण मानव अन्तः क्रिया करता है।'' इस परिभाषा से यह स्पष्ट होता है कि ग्रामीण समाजशास्त्र परस्पर क्रिया करते हुए विभिन्न ग्रामीण समूहों एवं ग्रामीण मान्यताओं से प्रभावित व्यक्तियों का अध्ययन है।

इस प्रकार यदि हम इन परिभाषाओं का सारगर्भित विश्लेषण करने का प्रयास करें तो हम पाते हैं कि ग्रामीण समाजशास्त्र ग्रामीण समाज का वैज्ञानिक अध्ययन करता है। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि ग्रामीण समाजशास्त्र ग्राम्य–जीवन का समाजशास्त्र है। भारत में ग्रामीण समाजशास्त्र

- "भारत गाँवों में रहता है, नगरों में नहीं। यदि मुझे गांवों को निर्धनता से मुक्त करने में सहायता मिल जाये, तो मैं समझँगा कि मैंने सारे भारत के लिए स्वराज्य प्राप्त कर लिया है। यदि गाँव नष्ट होता है, तो भारत भी नष्ट हो जायेगा।

भारत गाँवों का देश कहा जाता है। भारत में 80 प्रतिशत से भी अधिक जनसंख्या गाँवों में ही निवास करती है। गांव ही हमारी मूल प्राचीन सभ्यता एवं संस्कृति के स्रोत एवं केन्द्र रहे हैं। यद्यपि हमारे धर्म–ग्रन्थों जैसे ऋग्वेद, महाभारत, स्मृतियों एवं विभिन्न संहिताओं में ग्रामीण जीवन के विभिन्न पक्षों का विशद् विवेचन किया गया है, लेकिन भारत में ग्रामीण समाजशास्त्र अध्ययन के एक विशिष्ट क्षेत्र के रूप में बहुत बाद में विकसित हुआ। इसका मतलब यह नहीं कि 1947 से पहले किसी ने ग्रामों की ओर देखा ही नहीं था। हमारे राष्ट्रपिता स्वर्गीय महात्मा गांधी जी ने समाज की उन्नति के लिए अनेक कार्य किए। लेकिन उस समय ग्रामीण समाज का सुसंगठित अध्ययन नहीं किया जाता था। वैसे तो इसका श्रेय सामुदायिक विकास योजना को है। सामुदायिक विकास योजना का कार्यक्रम भारतवर्ष में 2 अक्तूबर 1942 से प्रारम्भ हुआ। इसके पश्चात् विश्वविद्यालयों द्वारा "ग्रामीण क्षेत्र" को अध्ययन का विषय बनाया गया। भारतीय ग्रामों के अनेक अध्ययन भारतीय समाजशास्त्रियों द्वारा किये जाने लगे। भारत में स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद ग्रामीण अध्ययनों को अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया। डॉ० ए. आर. देसाई कहते हैं, "स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् ग्रामीण सामाजिक संगठन, उसकी संरचना प्रकार्य एवं विकास का एक व्यवस्थित अध्ययन केवल आवश्यक ही नहीं था, अपितु यह अनिवार्य भी हो गया था। 15 स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद अनेक समाजशास्त्रियों ने ग्रामीण सामाजिक संरचनाओं, प्रकार्य, ग्रामीण परिवर्तनों, ग्रामीण समाज की समस्याओं, ग्रामीण नेतृत्व, नियोजित कार्यक्रमों के प्रभावों आदि पर अनेक महत्त्वपूर्ण अध्ययन प्रकाशित किए। इन महत्त्वपूर्ण अध्ययनों में कुछ प्रमुख कृतियाँ इस प्रकार से हैं

1. डॉ. एस.सी. दुबे

1. इण्डियेन विलेज
2. डॉ. एस. एन. श्री निवास

2. इण्डियेन चेन्जिंग विलेजेज

1. इण्डियाज विलेजेज
2. सोशल सिस्टम ऑफ ए मैसूर

3. डॉ. डी. एन. मजूमदार
1. रूरल प्रोफिल्स (सम्पादित)
2. कास्ट एण्ड कम्यूनिकेशन इन

4. डॉ. राधाकमल मुखर्जी
1. एन इण्डियन विलेज
फपं 1. द डाइनेमिक्स ऑफ ए रूरल (सम्पादित)

ए. राजस्थान विलेज
सोसाइटी
5. मैकिम मैरियट
2. सिक्स विलेजेज ऑफ बंगाल
6. ए. आर. देसाई
1. विलेज इण्डिया (सम्पादित) 1. रूरल सोश्योलॉजी इन इण्डिया
7. बी. आर. चौहान
(सम्पादित)

ए. राजस्थान विलेज
इन महत्त्वपूर्ण कृतियों के अलावा भी अनेक पुस्तकें ग्रामीण समाजशास्त्र के विभिन्न पक्षों पर प्रकाशित हुई हैं, पुस्तकों के अलावा अनेक पत्र–पत्रिकाओं का प्रकाशन भी स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद भारत में प्रारम्भ हुआ। इन पत्र–पत्रिकाओं में 'रूरल इण्डिया', 'रूरल सोश्योलॉजी', 'इण्डियन जनरल ऑफ एक्सटेन्शन एजुकेशन', 'काम्यूनिटी एक पंचायती राज', 'आर्थिक समीक्षा' आदि महत्त्वपूर्ण है। यही नहीं अब कुछ विश्वविद्यालयों ने 'रूरल सोश्योलॉजी' को एक पृथक विषय की मान्यता देकर पृथक विभाग की स्थापना का प्रयास भी प्रारम्भ किया है। अनेक विद्यार्थी, शोधार्थी एवं अध्यापक प्रतिवर्ष एक बहुत बड़ी संख्या में इस विषय के अध्ययन–अध्यापन में लगे हैं। यह स्थिति किसी भी विषय के समृद्ध विकास की परिचायक होती है।

ग्रामीण समुदाय का विकास
ग्रामीण समुदाय का विकास मानव की बढ़ती हुई आवश्यकताओं के कारण हुआ है। जब से उसे सस्यों के उगाने का ज्ञान होने लगा, तब से आदिवासी मानव परिवारों और कबीलों ने अपनी आवश्यकताओं को एक स्थान पर ही स्थिर होकर पूर्ण करने की ठानी, जिसके लिए उन्हें इधर–उधर दूर के स्थानों पर जाना पड़ता था।
इस प्रकार उन्होंने कृषि को अपना मुख्य उद्योग बनाया और अपनी तथा अपने पशुओं की आवश्यकताओं को एक स्थान पर रह कर ही पूरा करने का निश्चय किया। इस प्रकार गाँव अथवा ग्रामीण समुदाय का जन्म हुआ। धीरे–धीरे कृषि ने मनुष्य की पेट की चिन्ता को कम कर दिया और उसके पास कुछ समय की बचत भी आरम्भ हुई। फलतः समृद्ध जीवन और अवकाश ने मानव जाति को आज के दिन का रास्ता दिखाया। "इस प्रकार हम कह सकते हैं कि मानव सभ्यता की प्रथम किरण उन प्रारम्भिक गाँवों से प्रस्फुटित हुई और गांवों का विकास महत्त्वपूर्ण दूसरी मंजिल रही।' इस प्रकार सह–जीवन तथा आपसी मेल–जोल से उनमें एकता तथा सामुदायिक भावना बढ़ने लगी और धीरे–धीरे इन ग्रामीण समुदायों का विकास होता चला गया। ग्रामीण समुदायों में व्यापार का प्रारम्भ नहीं हुआ था, इसीलिए बहुत काल तक आत्मनिर्भरता उनके जीवन का विशेष लक्षण रहा। ग्रामीण समुदायों का जीवन बहुत ही सरल था और उनकी आवश्यकतायें भी सीमित थीं। इन समुदायों की जनसंख्या भी इतनी कम होती थी कि वे आपस में एक दूसरे से घनिष्ठ सम्बन्ध बनाये रखते थे। इस प्रकार गांव एक अलग समुदाय था। यह ऐसा समुदाय था, जो न सभी हितों की रक्षा करता है, वरन् सदा साहचर्य के कारण वह अपने सदस्यों के जीवन को अत्यधिक प्रभावित भी करता है। इसलिए हम उसे प्राथमिक समूह भी कह सकते हैं।

विभिन्न प्रकार के गांव
विश्व के विभिन्न भागों में अनेक प्रकार के मनुष्य रहते हैं और उनमें कृषि जन्म तथा विस्तार के साथ–साथ अनेक प्रकार के गांवों का उदय हुआ। यह अन्तर मुख्यतः भौगोलिक परिस्थितियों के कारण उत्पन्न हुआ है। इसके पश्चात् धीरे–धीरे टेकनीकी, आर्थिक और सामाजिक विकास के साथ अन्य समाजों से सम्पर्क और संघर्ष के परिणाम स्वरूप अनेक प्रकार के परिवर्तन आते रहे।
गांवों के इतिहास से हमें पता चलता है कि विभिन्न देशों और कालों में विभिन्न प्रकार से गांवों का विकास हुआ है। अंग्रेजी सैक्सन ग्राम, जर्मन मार्क, सामन्तवादी योरोप के गांव, रूसी मोर, भारत के कबायली, जमींदारी, महलबाड़ी और रैयतवाड़ी गांव और आज के विकसित गांव, जिनका विश्व की आर्थिक व्यवस्था से सीधा सम्पर्क है, इसके मुख्य उदाहरण हैं।

गांवों के वर्गीकरण के सिद्धान्त समाजशास्त्रियों ने गांवों के वर्गीकरण के अनेक सिद्धान्त प्रस्तुत किये हैं जिनमें से कुछ इस प्रकार हैं।

1. निवास के स्थायित्व के आधार परः– हैराल्ड जे. पीक ने अपनी पुस्तक 'ग्रामीण समुदाय' में मनुष्य को खानाबदोश अवस्था से स्थायी रूप में गांवों में बसने के विकास के परिवर्तन काल को ध्यान में रखते हुए गांवों को निम्नलिखित तीन भागों में विभाजित किया हैः

क) घूमने वाले निश्चित स्थान पर रहते हैं। जहाँ के लोग कुछ ही महीनों के लिए एक
ख) अर्ध–स्थायीः– जहाँ पर लोग कुछ वर्षों तक निवास करते हैं और भूमि की उर्बरा शक्ति क्षीण होने पर वहां से दूसरे स्थानों को चले जाते हैं।
ग) स्थायीः– जहाँ पर मनुष्यों का स्थायी जीवन है और वे पुश्त दर पुश्त से वहाँ रहते चले आ रहे हैं।

2. परिवार के विस्तार के आधार पर इस सिद्धान्त के आधार पर गांवों को दो भागों में बांटा गया हैः

क) सामूहिक अथवा केन्द्रित गांवः इसमें कृषक एक ही गांव में एकत्रित होकर रहते हैं और कृषि कार्य के लिए खेतों पर जाते हैं जो गांवों के बाहर होते हैं।
ख) बिखरे गांवः इनके कृषक एक साथ न रह कर अलग–अलग अपने क्षेत्रों पर ही घर बनाकर रहते हैं और उनका सामाजिक जीवन दूसरा ही रूप धारण कर लेता है।

3. सामाजिक विभेदीकरणः– स्तरीकरण, श्रम की गतिशीलता और भूमि के स्वामित्व के आधार पर इस सिद्धान्त के अनुसार गांवों को मुख्य छः श्रेणियों में विभाजित किया गया हैः

क) वह गांव जहाँ कृषकों का सांझा स्वामित्व है। वह गांव जहां लगान देकर सांझे में ज़मीन जोतने वाले शिकमी कास्तकार रहते हैं।

- वह गांव जहाँ के अधिकांश किसान भूमि के स्वयं मालिक हैं।
- ख) व्यक्तिगत रूप से कृषि कार्य करते हैं, किन्तु जिनमें कुछ शिकमी कास्तकार और श्रमिक भी रहते हैं। वह गांव जिसमें पूर्णतः व्यक्तिगत रूप से खेती करने वाले शिकमी कास्तकार रहते हैं।
- घ) वह गांव जिसमें किसी राज्य, मठ अथवा संस्था का स्वामित्व है और उसके श्रमिक तथा कारिन्दे रहते हैं।

ग्रामीण समुदायों में परिवर्तन

प्रकृति के नियमानुसार ग्राम समुदाय भी प्रारम्भ से निरन्तर परिवर्तित होते आ रहे हैं। प्राचीन और मध्यकाल में इनकी स्थिति बहुत ही गौरवमय थी और वे समाज की एक सुसंगठित इकाई समझे जाते थे। उनके मनुष्य सरल और स्वावलम्बी समाज के सभी सुखों का भोग करते थे। शासन जनतंत्रीय अधिकारों से परिपूर्ण था। इस प्रकार 19वीं सदी के प्रारम्भ तक ग्रामीण समुदायों में पूर्ण संगठन की ज्योति जलती रही। यद्यपि उसकी यंत्र विद्या, अर्थ व्यवस्था, सामाजिक संगठन, कला–कौशल तथाविचारधाराओं में कुछ रूपान्तर पहले भी होता रहा है, किन्तु अंग्रेजी शासन से इनका विघटन शीघ्र प्रारम्भ हो गया। ये विघटन प्राकृतिक और कृत्रिम दोनों ही प्रकार से हुए हैं। उदाहरणार्थ अकाल, ओला, बाढ़ तथा बीमारियाँ इत्यादि प्राकृतिक घटनायें रहीं, जिनके कारण अनेक बार ग्राम समुदायों के सामाजिक जीवन में विश्रृंखलता उत्पन्न हुई और जिनको रोकने का कोई उपाय नहीं किया गया। इसके अतिरिक्त कृत्रिम परिस्थितियों में गांव को नगर से दूर रक्खा गया। नगरों के लिए बड़ी–बड़ी सड़कें, बिजली, व्यवसाय तथा शिक्षा का प्रबन्ध होता गया और ग्राम समुदाय उनमें और भी अधिक दूर होता चला गया। धीरे–धीरे ये ग्रामीण समुदाय गरीबी, अशिक्षा, रूढ़िवादिता तथा आपसी फूट के अखाड़े बन गये। उनकी इस बिगड़ी दशा को सुधारने में कोई पथ–प्रदर्शक नहीं हुआ, उल्टे यदि वे नगरीय समुदायों के सम्पर्क में आये, तो उन्होंने उनको लड़ाई–झगड़े के लिए ही प्रोत्साहन दिया। अन्त में ग्रामीण समुदाय बाहरी लोगों के कर्ज से दबता गया और अपने उद्योग, कृषि, बागवानी तथा पशु–पालन में भी वह रूचि नहीं ले सका, जो आपेक्षित थी फलतः पैदावार गिरने लगी और उनका सामाजिक ढाँचा हिल गया। वे अपने सरल जीवन तथा उच्च विचार के आदर्शों को भूलने लगे तथा उनका जीवन कृत्रिमता से ढंकता गया। पंचायतों का नियंत्रण समाप्त हो गया और लोग नगरों के बड़े न्यायालयों तथा कानून के पंडितों का मुंह ताकने लगे। संयुक्त परिवार जैसी सुन्दर व्यवस्था को चुनौती दे दी गई और लोग अलग–अलग रहने में अपनी शान समझने लगे। ग्राम उद्योग तथा ग्राम कुटीर उद्योगों को औद्योगीकरण ने सहसा हजम कर लिया। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि 19वीं शताब्दी तथा अंग्रेजी राज्य ने ग्रामीण समुदाय की रीढ़ झुका दी और कुछ ही समय में वे पुरानी नोवें खोखली हो गई। इस प्रकार ग्राम समुदायों के पतनकारी प्रमाण का कोई एक कारण नहीं था वरन् अनेक थे, जिनमें से कुछ इस प्रकार से हैं:

1. किसानों के भूमि अधिकारों में अन्तरः– सन् 1776 ई में ईस्ट इंडिया कम्पनी को बंगाल के नवाबों से लगान वसूली का अधिकार मिलते ही उन्होंने भूमि पर अधिकार करना प्रारम्भ कर दिया। उन्होंने भूमि की नई व्यवस्थायें कानून द्वारा लागूको तथा चरागाहों, जंगलों तथा बेमलिकाना पेड़ों पर सरकारी अधिकार हो गया। इस प्रकार ग्रामीण जीवन की दृढ़ता छिन्न–छिन्न होनी प्रारम्भ हो गई।
2. नयी न्याय व्यवस्थाः– अंग्रेजी राज्य से पंचायतों का अन्त हो गया, जहां का न्याय सस्ता था और झूठी गवाहियों को कोई स्थान नहीं था। उसके स्थान पर अब उन्हें नगरों की धूल छाननी पड़ती और छोटे–छोटे मुकदमों के लिए वर्षों लड़ना पड़ता, जिसे श्रम और धन का विनाश दिनों दिन स्वाभाविक होता गया।
3. व्यापार का विस्तार तथा आत्मनिर्भरता का अन्तः– ग्रामीण समुदाय जो स्वावलम्बी थे वे अब व्यापार के बढ़ने के कारण कपास, गन्ना, धान, अफीम तथा तम्बाकू की खेती में लग गये और स्वयं की आवश्यकता के लिए दूसरों का मुंह ताकने लगे। आवश्यकता की छोटी–छोटी वस्तुओं के लिए शहर को भागने लगे। शहर में आकर अब वे अपने माल को ऊँचे दामों में बेचते तथा अपनी आवश्यकता की वस्तुयें वहां से ले जाते, इस प्रकार ग्रामीण समुदायों को आत्मनिर्भरता समाप्त हो गई। अभी तक जो लाभ स्थानीय आवश्यकताओं के आधार पर होता था वह अब व्यक्तिगत लाभ के लिए होने लगा।
4. विदेशी शिक्षाः– अंग्रेजी अथवा मैकाले की शिक्षा का उद्देश्य केवल बाबू बनना था, फलतः जो लोग इन ग्रामीण समुदायों से पढ़–लिखकर तैयार हुए वे वहाँ से निकलकर बाहर जाकर नौकरी करने लगे। इनकी देखा देखी दूसरे लोगों ने भी अपने बच्चों को अंग्रेजी शिक्षा देनी चाही, जो बहुत ही खर्चीली थी और शिक्षा के पश्चात् नौकरी के अभाव में वे बेकार होकर समाज के लिए भार स्वरूप हो गये, वहाँ अब बिना श्रम किए खानेवालों की संख्या बढ़ने लगी, जिससे ग्रामीण समुदायों का विघटन हुआ।
5. औद्योगीकरणः– देश में औद्योगिक विकास प्रारम्भ होने से लोग कृषि से उद्योग की ओर जाते लगे, जिससे कुछ ही समय में कृषि अनपढ़ लोगों का उद्योग बन गया। फलतः उसकी प्रगति केवल रुकी ही नहीं, वरन् वह दिनों दिन विघटन की ओर जाने लगा।
6. यंत्रीकरणः यंत्रीकरण से कृषि में भी जो कार्य मनुष्यों द्वारा होते थे वे अब यंत्रों से होने लगे। इसमें सभी लोग तो यंत्रों का लाभ नहीं उठा सके, किन्तु श्रम करना सभी ने कम कर दिया, फलतः उत्पादन कम हो गया। उदाहरणार्थ पहले सभी लोग ग्रीष्म काल में अपने खेतों की खुदाई फावड़े से कर डालते थे, किन्तु जब से मिट्टी पलटने वाले हलों का प्रयोग हुआ, उस समय से अधिकांश लोग निकम्मे हो गये और खुदाई अथवा जुताई दोनों ही समाप्त हो गई।
7. श्रमिकों का गांव छोड़नाः– यातायात की सुविधा बढ़ने से शहरों तथा गांवों की दूरी कम हो गई। शहरों में औद्योगिक विकास होने लगा और उससे श्रमिकों की आवश्यकता बढ़ गई। उन्होंने गांव के लोगों को पैसे का प्रलोभन दिया, जिससे श्रमिक गांव छोड़कर शहर में आने लगे। यहाँ उन्हें पैसा मिला, जिसमें वह अपना जीवन अधिक सुखी समझने लगे। परिणामतः धीरे–धीरे उन्होंने गांव का सम्बन्ध ही छोड़ दिया। इस प्रकार अच्छे कृषकों की संख्या कम होने लगी और उत्पादन गिर गया।
8. मुद्रा का उपयोगः– डॉ० कनिंघम ने लिखा है कि "जब तक समाज में अदला–बदली होती है उस समय तक भूमि कर तथा वेतन, परम्पराओं से नियंत्रित रहते हैं, किन्तु ज्यों ही मुद्रा का प्रयोग बढ़ता है ये दरें प्रतियोगिता से निश्चित होने लगती है। इसका कारण यह है कि अदला–बदली में मध्यस्थ की आवश्यकता नहीं होती, किन्तु मुद्रा के प्रयोग में मध्यस्थता की आवश्यकता होती है और यह कार्य मध्य वर्ग व्यापारी के रूप में करके उत्पादक तथा उपभोक्ता दोनों का रक्त चूसता जाता है और प्रत्येक वस्तु का मूल्य मुद्रा में आँका जाने लगता है, जिससे प्रतियोगिता दिनों दिन बढ़ती है। इससे आपसी सम्बन्ध तथा सामूहिकता की भावना का अन्त हो जाता है।
9. जनसंख्या में वृद्धिः– ग्रामीण समुदायों में शादी–ब्याह शीघ्र होने के कारण जनसंख्या में गति से बढ़ोतरी हो गई, इससे कृषि पर दबाव और अधिक बढ़ गया, फलस्वरूप वहां के समुदायों का विघटन होने लगा। यहाँ पर यह उल्लेख कर देना आवश्यक है कि जो लोग ग्रामीण समुदाय से बाहर गये, वह व्यवस्थित रूप से नहीं गये। प्रारम्भ में उन्होंने संबंध दोनों स्थानों से रखा इससे कृषि उत्पादन पर गहरा प्रभाव पड़ा। दूसरे स्थानों पर जहाँ जनसंख्या अधिक हुई, उन्होंने घर का मोह नहीं छोड़ा, इसलिए उदर पूर्ति की समस्या उनके समक्ष आ गई। किन्तु दोनों ही स्थितियों में कृषि उत्पादन का सन्तुलन बिगड़ता हो गया।
10. भूमि–विभाजन तथा असन्तोषः– सरकारी उत्तराधिकारी आदि कानूनों के कारण जैसे भूमि का बटवारा प्रारम्भ हो गया,

जिससे आपस में वैमनस्य तथा असन्तोष की भावना बढ़ने लगी। धीरे–धीरे खेतों का विभाजन और उप–विभाजन होता गया, जिससे परिवारों के पास आवश्यकता से कम भूमि रह गई। अब ये न तो अच्छे बैल ही रख सकते थे और न अधिक देख–रेख ही कर सकते थे, उदर–पूर्ति के लिए भी। अन्य साधनों को जुटाने की आवश्यकता पड़ने लगी। फलतः समुदायों के जीवन में परिवर्तन आने लगा।

11. भूमि की उर्वरा शक्ति में कमीः– धीरे–धीरे भूमि की उर्वरा शक्ति भी क्षीण होने लगी, क्योंकि कृषक भूमि में फसलें तो उगाते रहे, किन्तु उन्होंने भूमि की उर्वरा शक्ति संचित रखने के लिए कोई प्रयास नहीं किये, फलतः उत्पादन कम हो गया, जिससे जन–जन के सुख में बाधा पड़ने लगी।
12. वैज्ञानिक साधनों का अभावः– पढ़े–लिखे समुदाय ने खेती करना अयोग्य समझा, फलस्वरूप यह उद्योग अनपढ़ लोगों का ही उद्योग बन कर रह गया। इससे वैज्ञानिक उन्नति का लाभ किसी भी कृषक को नहीं हो सका। इससे ग्रामीण समुदाय खेती के काम में भी पीछे ही गिरते गये, जो उनके जीवन का एक मात्र साधन था।
13. नगर के जीवन का आकर्षण औद्योगिक विकास से नगरों के विकास को विशेष बल मिला। वहाँ के जीवन में कुछ आकर्षण भी बढ़ गये। जैसे पक्की सड़कें, अच्छे मकान, बाजार तथा जीवन–विलास की सामग्री की प्राप्ति आदि। इनसबके कारण ग्रामीण समुदाय के वे लोग जो नगरों में आकर जीवकोपार्जन कर सकते थे, उन्होंने ग्रामीण जीवन में रहना अच्छा नहीं समझा। इस प्रकार उस सामुदायिक दृढ़ता को चोट पर चोट लगती गई।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि ग्रामीण समुदायों के विघटन में राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक, वैज्ञानिक तथा सांस्कृतिक सभी कारणों का हाथ है।

ग्रामीण समाजशास्त्र के सामान्य उद्देश्य

ग्रामीण समाजशास्त्र ने मानव ज्ञानकोष की वृद्धि के चरम ध्येय से अपने अनेक उद्देश्य निर्धारित किए हैं। इन उद्देश्यों की पूर्ति यह अपने अध्ययन से करता है और इस भांति अपने चरम ध्येय की पूर्ति की ओर अग्रसर होता है। ग्रामीण समाजशास्त्र के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैंः

1. ग्रामीण सामाजिक जीवन का विश्लेषणः– ग्रामीण समाजशास्त्र का प्रमुख उद्देश्य ग्रामीण पर्यावरण में उपलब्ध सामाजिक जीवन का अध्ययन प्रस्तुत करता है। ग्रामीण पर्यावरण में उपलब्ध ग्रामीण सामाजिक ढाँचे का विस्तृत अध्ययन ग्रामीण समाजशास्त्र करता है। स्टुअर्ट चैपलिन ने उचित ही लिखा है, "ग्रामीण जीवन का समाजशास्त्र, ग्रामीण जनसंख्या, ग्रामीण सामाजिक संगठन एवं सामाजिक प्रक्रिया जो ग्रामीण जीवन में कार्यन्वित है, का अध्ययन है। इस प्रकार ग्रामीण समाजशास्त्र ग्रामीण सामाजिक जीवन, सामाजिक ढाँचे, संस्थाओं, कार्यों, जनसंख्या, सामाजिक संगठन, प्रक्रियाओं आदि का विश्लेषण करके सामान्यीकरण करता है। अतः हम कह सकते हैं कि ग्रामीण समाजशास्त्र का ध्येय ग्रामीण जीवन का विश्लेषण है। इस विश्लेषण के द्वारा केवल वर्तमान कालीन अथवा भविष्य में आने वाली समस्याओं का ही समाधान करना नहीं है वरन् यह एक सतत् प्रयत्न है, जिससे इस ज्ञानकोष में वृद्धि करनी है।

2. ग्रामीण सामाजिक संगठन का अध्ययनः– ग्रामीण समाजशास्त्र ग्रामीणसामाजिक संगठन का अध्ययन करता है। ग्रामीण सामाजिक संगठन में आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक, पारिवारिक, जातीय, वर्गीय आदि सभी संगठन आ जाते हैं और इन सभी संगठनों का ग्रामीण समाजशास्त्र समग्र रूप से अध्ययन प्रस्तुत करता है। ग्रामीण समाजशास्त्र इन संगठनों के द्वारा होने वाले सामाजिक नियन्त्रणों का भी अध्ययन करता है और अपना उद्देश्य सामाजिक नियन्त्रण को सफल बनाने का रखता है। इस भाँति ग्रामीण समाजशास्त्र, सामाजिक संगठनों का ग्रामीण सामाजिक नियन्त्रण के साधनों का अध्ययन प्रस्तुत करता है और सामाजिक नियन्त्रण के साधनों के लिए सुझाव भी देता है। इस भाँति ग्रामीण समाजशास्त्र सम्पूर्ण ग्रामीण समाज के संगठित जीवन का अध्ययन प्रस्तुत कर उसे विघटित होने से रोकने का उपाय बतलाता है तथा विघटन का विश्लेषण कर उसके कारणों का पता लगाकर उन्हें दूर करने का प्रयास करता है। इस भाँति ग्रामीण समाजशास्त्र का उद्देश्य, ग्रामीण सामाजिक संगठन का अध्ययन प्रस्तुत करना है।
3. ग्रामीण समस्याओं का विश्लेषण एवं समाधान ग्रामीण समाजशास्त्र का जन्म प्रारम्भ में ग्रामीण क्षेत्र में व्याप्त सामाजिक समस्याओं के अध्ययन के उद्देश्य से ही हुआ था और इसी उद्देश्य के साथ धीरे–धीरे अन्य उद्देश्य सम्मिलित होते गए और ग्रामीण समाजशास्त्र की वर्तमान धारणा विकसित हो गई। अमेरिका के चिकागो विश्वविद्यालय में समस्याओं के अध्ययन के दृष्टिकोण से ही इस विज्ञान का जन्म हुआ। वास्तव में ग्रामीण समाजशास्त्र ग्रामीण जीवन में व्याप्त सामाजिक समस्याओं का विस्तृत अध्ययन के द्वारा विश्लेषण करता है और इसके कारणों का पता लगाकर इन कारणों को दूर करने एवं इन समस्याओं का समाधान प्रस्तुत करता है– इस भाँति हम कह सकते हैं कि ग्रामीण समाजशास्त्र ग्रामीण जीवन में व्याप्त सामाजिक समस्याओं का अध्ययन प्रस्तुत कर इनका समाधान ढूँढता है। इन समस्याओं के अध्ययन ने ग्रामीण समाजशास्त्र के महत्त्व को निर्विवाद रूप से विस्तृत किया है। इस सम्बन्ध में प्रो. ए.आर. देसाई ने उचित ही लिखा है, "यह रचना प्रकाशित करती है कि ग्रामीण समाजशास्त्र के मूल लक्षणों एवं ग्रामीण जीवन को परिवर्तित करने वाली प्रमुख
4. ग्रामीण पुनर्निर्माण ग्रामीण समाजशास्त्र का एक उद्देश्य ग्रामीण जीवन का पुनः निर्माण करना भी है। ग्रामीण समाजशास्त्र ग्रामीण ढाँचे का अध्ययन करता है। ग्रामीण समस्याओं एवं ग्रामीण सामाजिक संगठन का भी अध्ययन करता है। ऐसी अवस्था में यह विघटन, समस्याओं आदि के कारणों का पता लगाकर इनका समाधान प्रस्तुत करता है और ग्रामीण पुनर्निर्माण के कार्य में सहयोग देता है। प्रो. देसाई ने भी लिखा है, "ग्रामीण समाज का उच्च आधारों पर पुनर्निर्माण करने के लिए हमारे लिए अत्यन्त आवश्यक है कि हम केवल आर्थिक शक्तियों का ही अध्ययन न करे बल्कि सामाजिक आदर्शवादी व अन्य शक्तियों का भी अध्ययन करें जो ग्रामीण जीवन में कार्य करती हैं।' '20 वास्तव में, यदि ग्रामीण समाजशास्त्र पुनर्निर्माण के क्षेत्र की ओर अपना ध्यान केन्द्रित न करें, तो इसका अध्ययन इतना महत्त्वपूर्ण नहीं हो पाएगा। इन पुनर्निर्माण के उद्देश्यों ने ही ग्रामीण समाजशास्त्र को इतना महत्त्वशाली शास्त्र बना दिया है।
5. अहमवाद का निराकरणः– ग्रामीण समाजशास्त्र विभिन्न ग्रामीण समाजों का सर्वांगीण अध्ययन प्रस्तुत करता है। विभिन्न संस्कृतियों से प्रभावित ग्रामीण जीवन का भी अध्ययन इसके अन्तर्गत सम्मिलित है। ऐसी अवस्था में ग्रामीण व्यक्ति केवल अपनी संस्कृति, अपने ग्राम को ही सर्वोच्च समझ कर अहमवाद के शिकार न हो जायें, यह धारणा ग्रामीण समाजशास्त्र के द्वारा समाप्त कर दी जाती है। और इसी संस्कृति के व्यक्तियों के प्रति विश्वबन्धुत्व की भावना का प्रसार किया जाता है।
6. नवीन ग्रामीण सामाजिक व्यवस्थाः– "ग्रामीण समाजशास्त्र का प्रमुख उद्देश्य वर्तमान सामाजिक व्यवस्था के विघटन को समाप्त कर ग्रामीण समाज को नवीनसामाजिक व्यवस्था

प्रदान करना है।"" और यह कार्य समस्याओं के समाधान, पुनर्निर्माण आदि के द्वारा करना है। ग्रामीण जीवन में कृषि क्रान्ति, औद्योगिक क्रान्ति, नागरीकरण आदि प्रक्रियाओं ने विघटन ला दिया है और ग्रामीण जीवन वर्तमान संस्कृति एवं सभ्यता के समकक्ष नहीं रह गया है, वरन् पिछड़ गया है। "ग्रामीण समाजशास्त्र का उद्देश्य है कि इस पिछड़ने को समाप्त कर ग्रामीण समाज को वर्तमान सभ्यता एवं संस्कृति के समकक्ष लाकर खड़ा कर दिया जाए और इस भांति ग्रामीण समाज को नवीन व्यवस्था प्रदान की जाए।

ग्रामीण समाज के उक्त प्रमुख उद्देश्य हैं। इन उद्देश्यों के अध्ययन से ग्रामीण समाजशास्त्र को आवश्यकता स्पष्ट हो जाती है कि ग्रामीण समाजशास्त्र इतने महत्त्वपूर्ण उद्देश्यों की पूर्ति करता है, जो किसी अन्य विज्ञान द्वारा नहीं की जा सकती। अतः ग्रामीण समाजशास्त्र की वर्तमान मानव समाज को अत्यन्त आवश्यकता है।

2.6 ग्रामीण समाजशास्त्र के प्रमुख प्रकार्य

ग्रामीण समाजशास्त्र अनेक कार्य मानव समाज के लिए करता है। ग्रामीण समाजशास्त्र ग्रामीण समाज के अध्ययन के द्वारा अनेक कार्य करता है। इन कार्यों में निम्नलिखित कार्य प्रमुख हैं

1. पारिभाषिक प्रकार्यः– ग्रामीण समाजशास्त्र का प्रमुख कार्य है, ग्रामीण पर्यावरण से प्रभावित सामाजिक जीवन का परिभाषित ज्ञान कराना। यह शास्त्र ग्रामीण जीवन में प्रयुक्त होने वाली धारणाओं की व्याख्या प्रस्तुत करता है। साधारण जनता इसका वैज्ञानिक अर्थ समझने में असमर्थ होती है। अतः यह शास्त्र इनकी परिभाषा एवं सूक्ष्म व्याख्या प्रस्तुत करता है, जिससे हमें उस धारणा विशेष को समझने में सहायता प्राप्त होती है।

2. परिचयात्मक प्रकार्यः– ग्रामीण समाजशास्त्र हमें ग्रामीण सामाजिक जीवनसामाजिक व्यवस्था सामाजिक ढाँचे, सामाजिक सम्बन्धों, प्रक्रियाओं आदि से परिचित कराता है। हम ग्रामीण समाज और उसको समस्याओं से परिचित होते हैं। "ग्रामीण समाजशास्त्र, ग्रामीण जीवन को सम्पूर्ण झाँको प्रस्तुत कर हमें ग्रामीण पर्यावरण एवं जीवन से परिचित कराता है।

3. सूचनात्मक प्रकार्यः ग्रामीण समाजशास्त्र हमें ग्रामीण जीवन से सम्बन्धित सभी सूचनाएं प्रदान करता है। ग्रामीण जीवन की क्या प्रवृत्ति है, वह किस दिशा में संचालित हो रही है, उसके क्या कारण हैं आदि बातों की सूचना यह शास्त्र देता है। इसके साथ ही यह कारणों का विश्लेषण योजना अमुक ग्रामीण समाज में कार्यान्वित हो रही है। इसके अमुख प्रभाव हुए हैं, इन प्रभावों का मूल्यांकन करके यह शास्त्र इनके औचित्य एवं अनौचित्य, सफलता एवं विफलता आदि की सूचना भी प्रदान करता है। यह सांस्कृतिक भिन्नता के आधार पर ग्रामीण जीवन की भिन्नता भी प्रदर्शित करता है। ग्रामीण जनसंख्या का आकार, घनत्व स्वरूप आदि की सूचना देता है और इस भाँति यह ग्रामीण जीवन से सम्बन्धित सम्पूर्ण सूचना देने का कार्यालय कहा जा सकता है।

4. सहिष्णुतात्मक प्रकार्य ग्रामीण समाजशास्त्र ग्रामीण जीवन का अध्ययन विशिष्ट समाजों, संस्कृतियों, समूहों, प्रजातियों का ध्यान रखे बिना प्रस्तुत करता है। इससे व्यक्तियों को ग्रामीण जीवन की सार्वभौमिकता एवं समानता का ज्ञान होता है और अहम्वाद को भावना का निराकरण होना, सहिष्णुता की भावना से 'विश्वबन्धुत्व' एवं 'वसुधैव कुटुम्बकम्' को धारणा विकसित होती है। इस आधार पर ग्रामीण समाजशास्त्र व्यक्ति को आदर्श नागरिक के रूप में भी प्रस्तुत करने का कार्य करता है।

5. सांस्कृतिक प्रकार्यः– ग्रामीण समाजशास्त्र संस्कृतियों का ज्ञान प्रस्तुत करता है और इस भाँति यह विभिन्न देशों को ग्रामीण एवं नागरिक संस्कृतियों का तुलनात्मकअध्ययन प्रस्तुत करता है। यह शास्त्र बतलाता है कि ग्रामीण संस्कृति क्या है? उसका यह रूप क्यों है? इसे कैसे परिवर्तित किया जा सकता है? इसे किस रूप में परिवर्तित किया जाना चाहिए? इस सांस्कृतिक रूप के पिछड़ जाने से ग्रामीण समाज में क्या विघटन आ गया है आदि तथ्यों का अध्ययन ग्रामीण समाजशास्त्र करता है और ग्रामीण संस्कृति का ज्ञान देने के साथ ही यह उस संस्कृति के विकास में भी योग देता है। और इस भाँति यह सांस्कृतिक विकास एवं पुनर्निर्माण का भी कार्य करता है।

6. प्रजातान्त्रिक प्रकार्यः– ग्रामीण समाजशास्त्र ग्रामीण समाज का अध्ययन प्रस्तुत कर, ग्रामीण जीवन का ज्ञान देता है। परिणामस्वरूप व्यक्तियों को यह ज्ञान होता है कि यह सभी कुछ मानव द्वारा निर्मित है। इसलिए स्वयं की योग्यता का महत्त्व बढ़ जाता है और व्यक्ति योग्यता के आधार पर समाज में अपना एक स्थान बना लेता है और कार्य करता है। इस भाँति इस धारणा के विकास में प्रजातान्त्रिक विचारधारा प्रसारित होती है क्योंकि प्रजातन्त्र के मूल आधार भी समानता, बन्धुत्व एवं स्वतन्त्रता हैं। यह समानता की भावना प्रजातान्त्रिक विचारों को विकसित करती है और इस भावना का विकास ग्रामीण समाजशास्त्र के द्वारा अधिक सरलता से सम्भव है।

7. सुधारात्मक प्रकार्यः– ग्रामीण समाजशास्त्र सुधारात्मक कार्य भी करता है। यह ग्रामीण जीवन में व्याप्त सामाजिक समस्याओं का अध्ययन करके विश्लेषण करता है और इस विश्लेषण के द्वारा उनका समाधान प्रस्तुत करता है। यह ग्रामीण सामाजिक कुरीतियों, बुराइयों आदि को दूर करने का प्रयत्न करता है। ग्रामीण समाजशास्त्र, पूर्ण रूप से व्यर्थ होता है, यदि यह सुधारात्मक कार्य नहीं लेता। ग्रामीण समाजशास्त्र का जन्म ही सुधार के दृष्टिकोण से हुआ था। इस भाँति यह शास्त्र ग्रामीण सामाजिक जीवन का विश्लेषण कर उसमें व्याप्त बुराइयों को दूर कर सुधार प्रस्तुत करता है।

8. रचनात्मक प्रकार्यः– "ग्रामीण समाजशास्त्र सुधारात्मक कार्य के साथ–साथ नवीन रचना का कार्य भी करता है यह ग्रामीण समस्याओं का रचनात्मक एवं प्रायोगिक साधन प्रस्तुत करता है। वह ग्रामीण जनता में शिक्षा, सामाजिक शिक्षा आदि के द्वारानवीन सामाजिक व्यवस्था की रचना करता है और इस भांति रचनात्मक कार्य करता है। वास्तव में ग्रामीण समाजशास्त्र ग्रामीण सामाजिक जीवन की महत्त्वपूर्ण सेवा करता है। लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण इसका उत्तम उदाहरण है।

9. पुनर्निर्माणात्मक प्रकार्यः– पुनर्निर्माणात्मक और रचनात्मक कार्यों में कोई विशेष अन्तर नहीं है। "पुनर्निर्माणात्मक कार्यों के अन्तर्गत वे कार्य आते हैं, जिनका प्राचीन व्यवस्था के सुधार के रूप में पुनर्निर्माण होता है और रचनात्मक के अन्तर्गत वे कार्य आते हैं, जिनमें नवीन रचना होती है। पुनर्निर्माण के अन्तर्गत ग्रामीण समाजशास्त्र प्राचीन सामाजिक व्यवस्था का सुधार कर उन्हीं का पुनर्निर्माण करता है। जैसे प्राचीन भारत में ग्राम एक आत्म–निर्भर इकाई के रूप में थे। आज पुनः ग्राम का यही रूप निर्माण करने का प्रयत्न किया जा रहा है। ये कार्य पुनर्निर्माण से सम्बन्धित हैं।

10. प्रशिक्षणात्मक प्रकार्यः– "ग्रामीण समाजशास्त्र ग्रामीण व्यक्तियों एवं ग्रामीण सामाजिक कार्यकर्त्ताओं को प्रशिक्षण देने का कार्य भी करता है, जिससे वे ग्रामीण क्षेत्रों में अधिक निपुणता से कार्य कर सकें। इस उद्देश्य पूर्ति के लिए ग्रामीण समाजशास्त्र अनेकों सामाजिक कार्यकर्त्ताओं को ग्रामीण क्षेत्रों

के सम्बन्ध में ज्ञान देकर वहाँ कार्य करने की प्रणालियों का व्यावहारिक एवं प्रायोगिक ज्ञान देता है, जिससे ये सामाजिक कार्यकर्ता ऐसे स्थानों पर जाकर कार्य करने में सक्षम होते हैं और ग्रामीण समाजशास्त्र का कार्य सुचारू रूप से करने में समर्थ होते हैं।

ग्रामीण समाजशास्त्र के उपरोक्त कार्यों से ग्रामीण समाजशास्त्र का महत्त्व एवं आवश्यकता पूर्ण रूप से स्पष्ट हो जाती है। ग्रामीण समाजशास्त्र का अध्ययन, उपरोक्त उद्देश्यों एवं कार्यों के आधार पर समाज में एक महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। ग्रामीण समाजशास्त्र के नियमों का सामाजिक उन्नति के लिए एक महत्त्वपूर्ण स्थान है। इसके नियमों से समाज में व्याप्त समस्याओं का समाधान कर सामाजिक एवंसांस्कृतिक प्रगति की जा सकती है। यही कारण है कि इतने कम समय में विज्ञान इतनी अधिक प्रगति कर गया है।

ग्रामीण समाजशास्त्र का महत्त्व

ग्रामीण समाजशास्त्र ग्रामीण समाज का अध्ययन करता है। संसार की अधिकांश जनसंख्या आज भी ग्रामों में बसी है। इसलिए ग्रामीण समाज का अध्ययन हमारे लिए इस युग में भी अत्यन्त आवश्यक है। मानव समाज ही हजारों वर्षों से ग्रामीण रहा है। नगरीय जीवन तो अभी कुछ शताब्दियों से ही विकसित हुआ है। वास्तव में देखा जाए तो नगरीय जीवन एक आधुनिक जीवन का प्रारम्भ है। इससे स्पष्ट है कि अब तक का समस्त समाजशास्त्र एक प्रकार से ग्रामीण जीवन का समाजशास्त्र ही है। लॉरी नेल्सन ने लिखा है, "अभी थोड़े समय से पूर्व तक के मनुष्य की कहानी अधिकतर ग्रामीण मनुष्य की कहानी है।" "2" इतना ही नहीं वर्तमान युग से पूर्व अधिकतर मनुष्य संसार के समस्त भागों में छोटे–छोटे ग्रामों में रहते आये हैं। थोड़े बहुत जो बड़े नगर बने हैं, उनमें भी ग्राम्य जीवन की ही झाँकी दिखाई पड़ती थी। नागरिक जीवन के लक्षण उनमें विकसित न हुए थे। समाज का समस्त जीवन ही ग्रामीण जीवन था। नगरीय जीवन का प्रारम्भ तो औद्योगिक क्रान्ति के उपरान्त ही हुआ है।

नागरीयकरण में अत्यधिक तीव्रता के बावजूद भी अधिकांश समाज ग्रामीण है। अमेरिका तथा यूरोप के कुछ देशों को छोड़कर संसार के अन्य देश, 90 प्रतिशत तक ग्रामीण हैं। भारत में 80 प्रतिशत जनसंख्या ग्रामीण है। इसी प्रकार पूर्व के अधिकतर देशों में भी ग्रामीण जनसंख्या ही अधिकतर पाई जाती है। अमेरिका तथा यूरोप के देशों में भी ग्रामीण जनसंख्या की बाहुल्यता है। कई बार हम इस भ्रम में रहते हैं कि जहाँ पर अधिक जनसंख्या रहने लगती है वहाँ नगरीय जीवन का विकास हो जाता है। परन्तु यह सत्य नहीं है। अधिक जनसंख्या के एक स्थान पर रहने केकारण, वास्तव में, नगरीय जीवन का विकास नहीं होता है और उनका अधिकांश जीवन ग्रामीण ही रहता है। एण्डर्सन ने भी इस विषय में लिखा हैकि "बगदाद या तेहरान कोई भी नगरीय जीवन को प्रदर्शित नहीं करते हैं।"'

भारत में ग्रामीण समाजशास्त्र का महत्त्व

भारत में ग्रामीण समाजशास्त्र का महत्त्व इस प्रकार से हैः

1. **भारत की अधिकतर जनसंख्या ग्रामीण हैः–** भारत एक कृषि प्रधान देश है भारत में अधिकतर जनसंख्या इस समय ग्रामीण है। इसलिए यह देश कृषि प्रधान देश कहलाता है।
2. भारतीय समाजशास्त्र ग्रामीण समाजशास्त्र हैः– भारत कृषि प्रधान देश है इसलिए अधिकतर अध्ययन ग्रामीण समाजशास्त्र से सम्बन्धित हैं। क्योंकि भारत प्रमुख रूप से एक ग्रामीण देश है। इससे स्पष्ट है कि भारतीय समाजशास्त्र, ग्रामीण समाजशास्त्र है।
3. ग्राम भारतीय संस्कृति का मूल स्रोतः– ग्राम भारतीय संस्कृति का मूल स्रोत है। भारत में ग्राम एक इकाई है। हमें भारतीय समाज एवं संस्कृति को समझने के लिए यहाँ के ग्रामों को समझना चाहिए।
4. कुछ विशेष अध्ययन सम्भवः– भारतीय ग्रामों के अध्ययन के लिए हमें कुछ विशेष प्रकार के अध्ययन करने पड़ेंगे। उदाहरण के लिए, ग्रामीण परिवारों का अध्ययन, जाति प्रथा का अध्ययन इत्यादि। जाति प्रथा का अध्ययन विशेष प्रकार से करना पड़ेगा क्योंकि जाति प्रथा संसार के अन्य देशों में नहीं पाई जाती। इस प्रथा का प्रभाव भारतीय ग्रामों पर विशेष रूप से पड़ा है।
5. दीनावस्था एवं दरिद्रता का दृश्यः– भारत का ग्रामीण समाज दीनावस्था एवं दरिद्रता का दृश्य प्रस्तुत करता है। भारतीय ग्रामों में अन्न को पैदा करने वाला, अन्नखाने को तरसता है। भारतीय कृषक गेहूं तथा हरी सब्जियाँ पैदा करता है। परन्तु उन्हें खा नहीं सकता। उनके छोटे–छोटे बच्चे दूध और घी के लिए तरसते हैं। भारतीय ग्रामों की दशा अत्यधिक खराब है। डॉ. देसाई के शब्दों में, "भारतीय ग्रामीण जीवन वास्तविक विपत्ति, सामाजिक पतन, सांस्कृतिक पिछड़ेपन और इन सबसे अधिक सबके ऊपर छाये हुए वेष्ट संकट काल का एक दृष्य प्रदान करता है।''" श्रीमती मल्ले गावदा ग्रामीण जीवन को चित्रित करती हुई लिखती हैं कि "भारत का नाम एक ऐसे व्यक्ति के स्वप्न–दर्शन की ओर ले जाता है जो गरीब, कमजोर, अध–भूखा और अध–नंगा, 5,58,000 की वृहत् संख्या वाले ग्रामों में अपनी जीवन–यात्रा घिसते हुए पूरी कर रहा उपरोक्त विद्वानों के विचारों से स्पष्ट है कि ग्रामीण भारत अत्यधिक दरिद्रता की अवस्था में है। हम सम्पूर्ण भारत की यही स्थिति समझ सकते हैं, क्योंकि भारत का 82.0 प्रतिशत भाग ग्रामों में ही बसा है। इस स्थिति को सम्भालने के लिए, हमें ग्रामीण समाजशास्त्र की अत्यधिक आवश्यकता है।
6. ग्रामीण समाज नगरीय समाज का भाग नहींः– ग्रामीण समाज नगरीय समाज का भाग नहीं है। ग्रामीण जीवन स्वयं ही अपना महत्त्व रखता है एवं उसकी अपनी अलग–अलग समस्याएं हैं। नगरीय जीवन उस से एक भिन्न जीवन है। इसलिए यह आवश्यक है कि ग्रामीण जीवन का अध्ययन अलग से ग्रामीण समस्याओं को महत्व देते हुए करना चाहिए। डॉ. देसाई के शब्दों में, "इसको अभी अपने स्वयं के विस्तार एवं महत्त्व का अध्ययन करना है।''
7. तीव्र गति से परिवर्तनशील ग्रामीण समाजः– भारतीय ग्रामीण समाज में तीव्र गति से परिवर्तन हो रहे हैं। इन परिवर्तनों के फलस्वरूप ग्रामीण समाज इतना अधिक परिवर्तित होता जा रहा है कि उसका प्राचीन स्वरूप प्रायः समाप्त हो गया है। यहपरिवर्तन प्रथम जो अंग्रेज़ी सभ्यता के प्रभाव के कारण हुआ तथा द्वितीय स्वतन्त्रता संग्राम का भी भारतीय ग्रामों पर प्रभाव पड़ा है। समाजशास्त्र के लिए ऐसे समाजों का, जो तीव्र गति से परिवर्तित हो रहे हैं, अत्यधिक महत्त्व है। इसी कारण भारतीय ग्रामीण समाज का भी अत्यधिक महत्त्व है। इसके परिणामस्वरूप ग्रामीण समाजशास्त्र की भारत में अत्यधिक आवश्यकता है। वास्तव में, केवल ग्रामीण समाजशास्त्र ही ग्रामीण पुनर्निर्माण को प्रोत्साहित कर सकता है।
8. ग्रामीण पुनर्निर्माणः– ग्रामीण पुनर्निर्माण की दृष्टि से भारतीय संघ ने अपने संविधान में ही उल्लेख किया है। राज्य की नीति के निर्देशक तत्व का निम्नलिखित अनुच्छेद महत्त्वपूर्ण हैः

भारत एक कृषि प्रधान देश है। यहाँ के ग्राम ही भारतीय संस्कृति के मूल स्रोत एवं आधार शिलाएं हैं। यहाँ 80 प्रतिशत जनसंख्या ग्रामों में निवास करती है। उत्तर में हिमालय से लेकर दक्षिण में कन्याकुमारी तक तथा पूर्व में बंगाल तक पश्चिम में बिलोचिस्तान तक गाँवों का एकछत्र राज्य है। ऐसी अवस्था में यदि हम यह कहें कि भारत ग्रामों का देश है तो अतिशयोक्ति न होगी। ऐसी अवस्था में ग्रामीण समाज के अध्ययन की आवश्यकता स्वयं ही

स्पष्ट हो जाती है कि इतनी वृहत् जनसंख्या वाले देश का अध्ययन करना एवं समस्याओं का समाधान करना कितना आवश्यक कार्य है और यह भी कल्पना की जा सकती है कि इस कार्य को करने वाला विज्ञान कितना महत्त्वपूर्ण होगा। ग्रामीण समाजशास्त्री प्रो. देसाई ने लिखा है कि "भारत में ग्रामीण समाजशास्त्र का उदय व महत्त्व आदिकालीन है।"2

हमारा भारत प्राचीन काल से ही आत्म–निर्भर, ग्रामीण इकाइयों में विभाजित था, जहाँ भाषा, वेश–भूषा, सभ्यता एवं संस्कृति में भिन्नता पाई जाती थी। भारतीय ग्रामों की इस विशिष्टता के बारे में कुरेनसन ने भी लिखा है– "पुरातन ग्राम केवल आर्थिक व प्रशासनिक इकाई ही नहीं थे बल्कि वे सहयोग एवं सांस्कृति जीवन के केन्द्र भी थे। उनके पास अपने त्यौहार, पर्व, लोकगीत, नृत्य, खेल व मेले थे, जिन्होंने जन को जीवन दिया और उनके उत्साह को बनाए रखा है।" यह विशेषता भारत में प्राकृतिकरूप से विद्यमान थी। विदेशी शासन ने इस सुन्दर व्यवस्था को खण्डित कर दिया। आत्मनिर्भरता का श्रेष्ठ गुण विदेशी शासन के प्रभाव, विदेशी सभ्यता एवं संस्कृति के परिणामस्वरूप समाप्त हो गया। नागरीकरण की प्रक्रिया से गांव उजड़ने लगे। औद्योगीकरण ने ग्रामीण उद्योग–धन्धों को समाप्त कर दिया। अंग्रेज़ों की शोषण एवं जमींदारी प्रथा ने ग्रामीण शरीर का रक्त चूसकर मात्र हड्डियों का पिंजर शेष रहने दिया। ग्रामों की आर्थिक दशा गिरने से सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, आध्यात्मिक दशाएं भी लुप्त होकर निम्न स्तर पर आने लगीं। ग्रामीण भारत अशिक्षा, भूख, बेकारी, ऋण, मद्यपान, मुकदमेबाजी आदि राक्षसों से घिर गया। ग्रामीण पंचायतों की समाप्ति से न्यायालय व्यवस्था ने ग्रामीण समाज को और भी अधिक पीड़ित किया। इस सम्बन्ध में प्रो. देसाई ने उचित ही लिखा है– अंग्रेजी शासकों ने इस भांति पुरातन आधार प्रविधियों एवं उत्पादन के प्राचीन संगठनों को शिथिल कर दिया लेकिन उनके स्थान पर स्वस्थ एवं स्थायी नवीनता सीमित अंश में भी विकसित नहीं की।

वास्तव में यदि अंग्रेजी शासक इस दिशा में तनिक भी कार्य करते तो भारत की यह दशा नहीं होती जो हो गई है। ऐसी परिस्थिति में ग्रामीण समाजशास्त्र ही एक ऐसा विज्ञान था जिसके द्वारा ग्रामीण जनता तक प्रकाश की किरणें पहुँचाई जा सकती थीं। किन्तु देश में इस शास्त्र के ज्ञान के प्रसार के अभाव ने इस दिशा में कोई ठोस कदम उठाने से वंचित रखा। परिणामस्वरूप विभिन्न अर्थशास्त्रियों ने आर्थिक आधार पर भारतीय स्थिति को सुधारने का प्रयास किया। "इसमें कोई संदेह नहीं कि इन अर्थशास्त्रियों के प्रयत्न कुछ सीमा तक सफल भी हुए हैं किन्तु फिर भी ग्रामीण समाज के लिए ग्रामीण समाजशास्त्रीय अध्ययन की अत्यन्त आवश्यकता है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद तो यह आवश्यकता और भी बढ़ गई द्य इस सम्बन्ध में प्रो. देसाई ने भी लिखा है, "ग्रामीण सामाजिक संगठन व इसके ढाँचे, कार्य एवं मूल्यांकन का व्यवस्थित अध्ययन स्वतन्त्रता प्राप्ति के उपरान्त केवल आवश्यक ही नहीं अपितु अति आवश्यक हो गया।"

इस प्रकार ग्रामीण समाजशास्त्र ग्रामीण जीवन में व्याप्त ग्रामीण समस्याओं के निवारण हेतु अति महत्त्वपूर्ण विज्ञान है। सामाजिक क्षेत्र में कोई भी समस्या समाजशास्त्रीय अध्ययन के बिना सुलझाई नहीं जा सकती है। प्रत्येक समस्या को सुलझाने के लिए वैज्ञानिक अध्ययन की आवश्यकता है। समस्या विशेष का कार्य व कारण के बिना उपयुक्त समाधान करना अत्यन्त ही कठिन कार्य है अतः हम कह सकते हैं कि भारतीय ग्रामीण समाजशास्त्र का महत्त्व अति आवश्यक रूप से बढ़ गया। है और वर्तमान युग में यहाँ इसकी विशेषतः अनिवार्यता है।

इस प्रकार हमारे ग्रामीण ढाँचे के विघटित रूप को पुनः संगठित व आत्मनिर्भर बनाने के लिए समस्याओं का वैज्ञानिक अध्ययन अत्यन्त ही आवश्यक है। ग्रामीण समाजशास्त्र ही इस गम्भीर स्थिति को सुधारने में साधक हो सकता है। श्री नेल्सन और टेलर ने लिखा है कि "भारत में ग्रामीण समाजशास्त्र का मुख्य उद्देश्य देशवासियों की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक व्यवस्थाओं का अध्ययन कर सुधार प्रस्तुत करना है। ग्रामीण समाजशास्त्र का कार्य अधिकांशतः व्यावहारिक खोजों में निहित है। यह शास्त्र ग्रामीण जनसंख्या और खेतों के सांख्यिकीय विश्लेषण द्वारा उचित सामाजिक तथ्यों का उद्घाटन करता है।

संदर्भ

1. रैडक्लिफ बाउन : सामाजिक संरचना
2. R Brown. The Socialogy; p. 98.
3. HM Johnson. Saciology. 984. Parsons: The Aries of society, p. 36-40.
4. नैडेल: सामाजिक व्यवस्था 6. जॉनसन, सामाजिक संरचना के प्रमुख तत्त्व 7. जोनसन: सामाजिक व्यवस्था
5. शर्मा (एस. एस.): सामाजिक व्यवस्था, मेरठ टालकोट पार्सन्स : समाजशास्त्र की पाठ्य पुस्तक, पृ.164 10. मोतीलाल गुप्ता, भारतीय सामाजिक संस्थाएं, पृ.6 11. आर. एम. मैकाईबर एण्ड पेज, सोसायटी, पृ.15
6. गिलिन एण्ड गिलिन: कल्चरल सोसियोलाजी, पृ. 315 13. सो. एच कूले: भारतीय सामाजिक संस्थाएं, पृ. 8
7. David: Human Society; p. 452.
8. Macluuer RM, Community. p. 162-163 16.
9. Feiblemen J.K. The Institutions of Society; c1956. p. 8.30.
10. ग्रीन : समाजशास्त्र के मूल तत्त्व, पृ. 344.
11. गिस्ट : समाजशास्त्र, पृ. 144.
12. गिलिन और गिलिन : समाजशास्त्र की विवेचना, पृ.8